



हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में नादानुसंधान, साधना एवं समाधि का विवेचन

मनीष कुमार

शोधार्थी, श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

Article Info: (Received- 02/06/2026, Accepted- 03/07/2026, Published- 06/08/2026)

DOI- 10.70650/rvimj.2026v3i8001

शोधसार

प्रस्तुत शोध-पत्र में हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता के आलोक में नादानुसंधान, साधना तथा समाधि की अवधारणाओं का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। हठयोग परम्परा में नादानुसंधान को चित्तलय तथा राजयोग की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। इस अध्ययन में दोनों ग्रंथों में प्रतिपादित गुरु-तत्त्व, प्राणायाम, नाडीशुद्धि, सुषुम्ना, कुण्डलिनी-जागरण तथा मन-प्राण के पारस्परिक सम्बन्ध का समीक्षात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही नादानुसंधान की क्रमिक अवस्थाओं आरम्भ, घट, परिचय एवं निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि नादानुसंधान केवल श्रवण की प्रक्रिया नहीं, बल्कि साधक की चेतना के क्रमिक परिष्कार का माध्यम है। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि हठयोग प्रदीपिका नादानुसंधान की व्यावहारिक साधना-पद्धति का क्रमबद्ध प्रतिपादन करती है, जबकि शिव संहिता उसी साधना के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आयामों का विस्तृत निरूपण करती है। दोनों ग्रंथों का समन्वित अध्ययन यह सिद्ध करता है कि नादानुसंधान हठयोग की साधना में समाधि एवं आत्मानुभूति की प्राप्ति का एक प्रभावी एवं सुव्यवस्थित मार्ग है।

मुख्य शब्द— हठयोग, हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता, नादानुसंधान, साधना, समाधि, प्राणायाम, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, मनोलय, राजयोग, चित्तलय, आत्मानुभूति, योगदर्शन।

भूमिका

भारतीय दार्शनिक परम्परा में योग का स्वरूप केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव व्यक्तित्व के शारीरिक, प्राणिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक आयामों के क्रमिक परिष्कार का समन्वित अनुशासन है। वैदिक एवं उपनिषदिक चिन्तन में प्रतिपादित आत्मविद्या का व्यावहारिक स्वरूप योग के माध्यम से विकसित हुआ, जिसने साधक के अन्तर्मन को चित्तवृत्तियों के बन्धन से मुक्त कर परमचेतना के अनुभव तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त किया। इसी व्यापक योग-परम्परा में हठयोग का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि यह साधना के बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करता है। हठयोग की साधना-पद्धति का मूल उद्देश्य केवल शरीर को स्वस्थ एवं समर्थ बनाना नहीं है, अपितु शरीर को ऐसा साधन बनाना है जिसके माध्यम से प्राण का परिष्कार, मन का स्थिरीकरण तथा अन्ततः चित्त का लय सम्भव हो सके। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, षट्कर्म तथा ध्यान आदि परस्पर पृथक-पृथक साधन नहीं हैं, बल्कि एक क्रमिक आध्यात्मिक प्रक्रिया के विभिन्न सोपान हैं। इन सभी साधनों का अंतिम लक्ष्य साधक को उस स्थिति तक ले जाना है जहाँ मन, प्राण और चेतना का सामञ्जस्य स्थापित होकर समाधि का अनुभव सम्भव हो सके। योग साहित्य में नादानुसंधान का उल्लेख इसी आन्तरिक साधना की परिपक्व अवस्था के रूप में प्राप्त होता है। सामान्य अर्थ में शनादश ध्वनि का द्योतक है, किन्तु हठयोग के सन्दर्भ में इसका आशय बाह्य श्रव्य ध्वनि से नहीं, बल्कि साधना के परिणामस्वरूप अनुभव होने वाले अनाहत नाद से है। साधक जब इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति का निरोध कर चित्त को अन्तर्मुख करता है, तब वह सूक्ष्म नाद का अनुभव करता है। यही अनुभव क्रमशः मन की चञ्चलता का निरोध कर उसे लय की अवस्था की

ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार नादानुसंधान केवल श्रवण की क्रिया नहीं, बल्कि चेतना के क्रमिक अन्तर्मुखीकरण की एक विशिष्ट योग-पद्धति है। हठयोग की इस साधना-परम्परा का सर्वाधिक व्यवस्थित प्रतिपादन हठयोग प्रदीपिका में प्राप्त होता है। ग्रंथकार स्वात्माराम ने नादानुसंधान को समस्त लयोपायों में सर्वोपरि मानते हुए उसे राजयोग की प्राप्ति का अत्यन्त प्रभावी साधन स्वीकार किया है। ग्रंथ में नाद-साधना की प्रक्रिया, उसकी अवस्थाओं तथा मनोलय से समाधि तक की यात्रा का क्रमबद्ध निरूपण मिलता है, जिससे सिद्ध होता है कि नादानुसंधान हठयोग की परिपक्व साधना का अनिवार्य अंग है। दूसरी ओर शिव संहिता नाद की अवधारणा को प्राण, सुषुम्ना, कुण्डलिनी तथा ब्रह्मरन्ध्र की व्यापक योगिक प्रक्रिया से सम्बद्ध करती है। इस ग्रंथ में साधना का केन्द्रबिन्दु प्राण की मध्य मार्ग में प्रतिष्ठा तथा मन के लय पर है। जब प्राण सुषुम्ना में प्रवाहित होता है और मन विषयासक्ति से निवृत्त होकर अन्तर्मुख होता है, तब साधक क्रमशः उन्मनी तथा समाधि की अवस्था का अनुभव करता है। अतः शिव संहिता नाद को स्वतंत्र साधना न मानकर सम्पूर्ण योगिक रूपान्तरण की परिणति के रूप में प्रस्तुत करती है। यद्यपि हठयोग प्रदीपिका और शिव संहिता दोनों ही ग्रंथ हठयोग साधना के प्रमुख आधारग्रंथ हैं, तथापि नादानुसंधान, साधना तथा समाधि के सन्दर्भ में उनकी प्रस्तुति की शैली, दार्शनिक बल तथा साधना-विधान में कुछ विशिष्टताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक ओर हठयोग प्रदीपिका नादानुसंधान को लययोग का प्रमुख साधन मानकर उसकी क्रमिक अवस्थाओं का विस्तृत विवेचन करती है, वहीं शिव संहिता प्राण, सुषुम्ना और कुण्डलिनी के समन्वय के माध्यम से उसी साधना की अन्तर्दृष्टि को विकसित करती है। इन दोनों ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन न केवल हठयोग की साधना-पद्धति को अधिक स्पष्ट करता है, बल्कि समाधि की अवधारणा के विविध आयामों को भी उद्घाटित करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में प्रतिपादित नादानुसंधान, साधना तथा समाधि की अवधारणाओं का ग्रंथाधारित, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन करना है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करेगा कि इन दोनों ग्रंथों में नाद को किस प्रकार साधना की क्रमिक प्रगति, मनोलय तथा राजयोग अथवा जीवन्मुक्ति की अवस्था से सम्बद्ध किया गया है।

नादानुसंधान की अवधारणा

हठयोग परम्परा में नादानुसंधान का स्थान केवल एक ध्यान-पद्धति के रूप में नहीं, बल्कि चित्तलय की वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है। 'नाद' और 'अनुसंधान' इन दोनों पदों के संयुक्त अर्थ से निर्मित यह अवधारणा साधक को बहिर्मुख चेतना से अन्तर्मुख चेतना की ओर अग्रसर करती है। हठयोग का मानना है कि जब मन इन्द्रियजन्य विषयों से निवृत्त होकर सूक्ष्म आन्तरिक नाद में अवस्थित होता है, तब उसकी चञ्चलता क्रमशः क्षीण होने लगती है तथा अन्ततः वही अवस्था समाधि की पूर्वपीठिका बनती है। इस प्रकार नादानुसंधान का उद्देश्य केवल किसी सूक्ष्म ध्वनि का अनुभव करना नहीं, बल्कि मन के विक्षेपों का निरोध कर उसे आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित करना है। हठयोग नाद को बाह्य आघात से उत्पन्न ध्वनि के रूप में नहीं, अपितु साधना से उद्भूत अनाहत चेतना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति के रूप में समझा गया है। यह नाद किसी भौतिक कम्पन का परिणाम न होकर साधक की अन्तःप्रज्ञा में अनुभूत होने वाली वह आध्यात्मिक अनुभूति है, जो प्राण के सुषुम्ना मार्ग में प्रवाहित होने तथा मन के अन्तर्मुख होने पर प्रकट होती है। इसीलिए नादानुसंधान का सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से अधिक चित्त की एकाग्रता और अन्तःचेतना से है। हठयोग प्रदीपिका में नादानुसंधान को समस्त लयोपायों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। ग्रंथकार स्वात्माराम का मत है कि यद्यपि पूर्वाचार्यों ने लययोग के अनेक साधनों का प्रतिपादन किया है, तथापि उनमें नादानुसंधान सर्वाधिक प्रभावी एवं शीघ्र फलदायक साधन है। यह प्रतिपादन स्पष्ट करता है कि ग्रंथकार नाद को केवल ध्यान का विषय न मानकर सम्पूर्ण लययोग की केंद्रीय प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं। शिव संहिता में नाद का विवेचन अपेक्षाकृत भिन्न शैली में प्राप्त होता है। यहाँ नाद की चर्चा प्राण, मन तथा सुषुम्ना के पारस्परिक सम्बन्ध के संदर्भ में की गई है। ग्रंथ के अनुसार इन्द्रियों का नियामक मन है, मन का नियामक प्राण है और प्राण का लय नाद के आश्रय से सम्पन्न होता है। इस प्रकार नाद यहाँ केवल अनुभव का विषय नहीं, बल्कि मन एवं प्राण दोनों के लय का आधार बन जाता है। दोनों ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हठयोग प्रदीपिका नादानुसंधान को साधना की विशिष्ट विधि के रूप में विकसित करती है, जबकि शिव संहिता उसे सम्पूर्ण योगिक चेतना के आन्तरिक रूपान्तरण का स्वाभाविक परिणाम मानती है। दोनों की प्रस्तुति में भिन्नता होने पर भी उनका मूल उद्देश्य समान है चित्त को विषयासक्ति से मुक्त कर ऐसी अवस्था में प्रतिष्ठित करना जहाँ साधक का अनुभव बाह्य जगत् से हटकर आत्मचौतन्य में स्थित हो जाए। इसी बिन्दु पर नादानुसंधान साधना और समाधि के मध्य सेतु का कार्य करता है।

हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में नादानुसंधान की साधना-प्रक्रिया

नादानुसंधान हठयोग साधना-पद्धति का प्रारम्भिक चरण नहीं, बल्कि दीर्घकालीन योगाभ्यास की परिपक्व अवस्था है। अतः इसे समझने के लिए उन साधनात्मक सोपानों का अध्ययन आवश्यक है जिनके माध्यम से साधक का शरीर, प्राण और चित्त नादानुभूति के योग्य बनते हैं। हठयोग प्रदीपिका तथा शिव संहिता दोनों इस तथ्य पर सहमत हैं कि जब तक साधक की नाड़ियाँ शुद्ध नहीं होतीं, प्राण का प्रवाह सुषुम्ना में स्थापित नहीं होता और मन की चञ्चलता नियंत्रित नहीं होती, तब तक नादानुसंधान की वास्तविक अनुभूति सम्भव नहीं है। अतः नादानुसंधान को एक स्वतंत्र अभ्यास के रूप में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण हठयोग साधना की स्वाभाविक परिणति के रूप में ग्रहण करना चाहिए। साधना की इस प्रक्रिया का प्रथम आधार गुरु है। हठयोग परम्परा में योगविद्या को केवल शास्त्राध्ययन से उपलब्ध ज्ञान नहीं माना गया, बल्कि गुरु से प्राप्त अनुभवपरक परम्परा का अंग स्वीकार किया गया है। शिव संहिता स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करती है कि गुरु के मुख से प्राप्त विद्या ही प्रभावशाली होती है; अन्यथा वही विद्या निष्फल अथवा साधक के लिए कष्टदायक सिद्ध हो सकती है। इसी प्रकार साधना की सफलता के लिए विश्वास, श्रद्धा, गुरु-पूजन, समत्व तथा इन्द्रियनिग्रह को अनिवार्य गुणों में सम्मिलित किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि योग की प्रगति केवल तकनीकी अभ्यास पर निर्भर नहीं करती, बल्कि साधक के आन्तरिक संस्कार एवं अनुशासन पर भी आधारित होती है। गुरु-उपदिष्ट साधना के पश्चात् योगी का ध्यान प्राण के परिष्कार की ओर निर्देशित होता है। दोनों ग्रंथों में प्राणायाम को नाड़ीशोधन का प्रधान साधन माना गया है। शिव संहिता के अनुसार नियमित कुम्भकाभ्यास से नाड़ियों की शुद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर के दोष क्षीण होते हैं तथा साधक उच्चतर योगाभ्यास के लिए पात्र बनता है। नाड़ीशुद्धि को यहाँ केवल शारीरिक शोधन नहीं, बल्कि सूक्ष्म प्राण-तंत्र के संतुलन की अवस्था के रूप में निरूपित किया गया है। इस अवस्था के बिना सुषुम्ना का जागरण तथा नादानुभूति दोनों ही अधूरे माने गए हैं। प्राण के परिष्कार के उपरान्त साधना का केन्द्र सुषुम्ना बन जाती है। हठयोग प्रदीपिका का मत है कि जब प्राण सुषुम्ना मार्ग में प्रवाहित होने लगता है, तब मन क्रमशः उन्मनी अवस्था की ओर अग्रसर होता है। इसके विपरीत जब तक प्राण इड़ा और पिङ्गला के मध्य ही गतिशील रहता है, तब तक चित्त विषयगत प्रवृत्तियों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाता। इसलिए सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश नादानुसंधान की आधारभूत शर्त माना गया है। शिव संहिता भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए सुषुम्ना को प्राण, कुण्डलिनी तथा ब्रह्ममार्ग का केन्द्र स्वीकार करती है। इस प्रकार दोनों ग्रंथों में सुषुम्ना केवल सूक्ष्म नाड़ी नहीं, बल्कि समाधि की दिशा में अग्रसर होने वाला आध्यात्मिक मार्ग है।

प्राण, मन एवं सुषुम्ना का पारस्परिक सम्बन्ध रू नादानुसंधान की आधारभूमि

हठयोग के दार्शनिक आधार का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि प्राण और मन परस्पर आश्रित तत्त्व हैं। इनमें से किसी एक की गति दूसरे की गति को निर्धारित करती है। अतः योगसाधना का लक्ष्य केवल मानसिक एकाग्रता अथवा प्राणनियमन तक सीमित नहीं है, बल्कि दोनों के समन्वित नियंत्रण के माध्यम से चित्त को लय की अवस्था तक पहुँचाना है। इसीलिए हठयोग में प्राणायाम और ध्यान को परस्पर पूरक साधन माना गया है। जिस साधना द्वारा प्राण का निरोध सम्भव होता है, उसी साधना से मन भी नियंत्रित हो जाता है। इसी प्रकार जहाँ मन स्थिर होता है, वहाँ प्राण की चञ्चलता भी स्वतः समाप्त हो जाती है। यह पारस्परिक निर्भरता इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि योग का वास्तविक उद्देश्य किसी एक तत्त्व का दमन नहीं, बल्कि दोनों का सामञ्जस्य स्थापित कर उन्हें लय की ओर अग्रसर करना है। इसी सिद्धान्त का विस्तार करते हुए यह भी प्रतिपादित किया गया है कि मन और प्राण का सम्बन्ध दूध और जल के समान अभिन्न है। दोनों की गति, प्रवृत्ति तथा निवृत्ति परस्पर संबद्ध हैं; अतः मन की चञ्चलता प्राण की अस्थिरता का कारण बनती है और प्राण की स्थिरता मन को भी स्थैर्य प्रदान करती है। यह उपमा हठयोग की मनोवैज्ञानिक दृष्टि को अभिव्यक्त करती है, जिसके अनुसार मानसिक अनुशासन का वास्तविक आधार प्राण का संतुलन है। शिव संहिता भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करती है, किन्तु उसका प्रतिपादन अधिक साधनात्मक है। ग्रंथ के अनुसार नाड़ीशोधन तथा नियमित कुम्भकाभ्यास के परिणामस्वरूप प्राण का प्रवाह क्रमशः सुषुम्ना में प्रतिष्ठित होता है। जब प्राण इड़ा और पिङ्गला के द्वैतात्मक प्रवाह का अतिक्रमण कर मध्य मार्ग में स्थित होता है, तभी साधक उच्चतर योगावस्था में प्रवेश करता है। इस अवस्था में बाह्य विषयों की अपेक्षा अन्तःचेतना की सक्रियता बढ़ती है और साधक नादानुभूति के योग्य बनता है। अतः सुषुम्ना केवल एक सूक्ष्म नाड़ी का नाम नहीं है, बल्कि वह चेतना का ऐसा आध्यात्मिक माध्यम है जिसके द्वारा प्राण का बहिर्मुख प्रवाह अन्तर्मुख होकर मन के लय का कारण बनता है। नादानुसंधान इसी अन्तर्मुखी प्रक्रिया का परिपक्व रूप है। अतः नाद का अनुभव किसी आकस्मिक आध्यात्मिक घटना का परिणाम नहीं, बल्कि दीर्घकालीन प्राण-संयम, नाड़ीशुद्धि तथा चित्त-नियमन की क्रमिक साधना का स्वाभाविक फल है। इस दृष्टि से नादानुसंधान को हठयोग की साधना-पद्धति में प्राण, मन और सुषुम्ना के समन्वय की चरम अभिव्यक्ति माना जा सकता है।

कुण्डलिनी जागरण एवं नादानुसंधान: साधना की आन्तरिक प्रक्रिया

हठयोग की साधना में कुण्डलिनी का स्थान केवल एक तांत्रिक अवधारणा तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण योगिक रूपान्तरण का केन्द्रीय तत्त्व है। हठयोग के अनुसार साधारण अवस्था में मानव की आध्यात्मिक शक्ति सुप्त रहती है, जिसके कारण प्राण का प्रवाह मुख्यतः इड़ा एवं पिङ्गला नाड़ियों तक सीमित रहता है। जब साधक दीर्घकालीन अभ्यास, प्राणसंयम तथा मुद्राओं के माध्यम से इस सुप्त शक्ति का जागरण करता है, तब प्राण सुषुम्ना मार्ग में प्रवाहित होकर चेतना के उच्चतर आयामों का उद्घाटन करता है। नादानुसंधान इसी आन्तरिक प्रक्रिया का परिपक्व परिणाम है, क्योंकि वास्तविक नादानुभूति उसी साधक को सम्भव होती है जिसका प्राण मध्य मार्ग में प्रतिष्ठित हो चुका हो। हठयोग प्रदीपिका में कुण्डलिनी-जागरण को नादानुसंधान की पूर्वावस्था के रूप में निरूपित किया गया है। ग्रंथकार का मत है कि गुरु-कृपा एवं मुद्राभ्यास के प्रभाव से जब कुण्डलिनी जागृत होती है, तब शरीर के समस्त पदम एवं ग्रन्थियाँ भेदित होने लगती हैं। यह केवल सूक्ष्म शरीर की प्रतीकात्मक व्याख्या नहीं, बल्कि साधक की चेतना में होने वाले क्रमिक रूपान्तरण का संकेत है। कुण्डलिनी के जागरण के उपरान्त प्राण का मार्ग परिवर्तित होता है और साधक का ध्यान स्वाभाविक रूप से अन्तर्मुख होने लगता है। इस प्रकार नादानुसंधान किसी पृथक् साधना का परिणाम नहीं, बल्कि जाग्रत कुण्डलिनी की क्रियाशीलता का स्वाभाविक विस्तार है। शिव संहिता कुण्डलिनी का विवेचन अधिक विस्तृत एवं दार्शनिक रूप में प्रस्तुत करती है। ग्रंथ के अनुसार मूलाधार में स्थित यह शक्ति सम्पूर्ण नाड़ियों को आवेष्टित किए रहती है तथा ब्रह्ममार्ग का द्वार उसी के नियंत्रण में होता है। जब तक यह शक्ति सुप्त रहती है, तब तक प्राण का प्रवाह बाह्यमुखी बना रहता है और साधक संसारचक्र से मुक्त नहीं हो पाता। किन्तु जैसे ही योगाभ्यास के प्रभाव से कुण्डलिनी ब्रह्ममार्ग का उद्घाटन करती है, प्राण सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है। यही अवस्था नादानुभूति तथा समाधि की वास्तविक भूमिका का निर्माण करती है। दोनों ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कुण्डलिनी का जागरण स्वयं साध्य नहीं, बल्कि साधना की आन्तरिक प्रगति का संकेतक है। हठयोग प्रदीपिका इस प्रक्रिया में मुद्राओं एवं अभ्यास की प्रभावशीलता पर विशेष बल देती है, जबकि शिव संहिता प्राण, नाड़ियों तथा ब्रह्मरन्ध्र के परस्पर सम्बन्ध को अधिक विस्तार से स्पष्ट करती है। तथापि दोनों ग्रंथ इस निष्कर्ष पर एकमत हैं कि सुषुम्ना में प्राण की प्रतिष्ठा के बिना न तो नाद का वास्तविक अनुभव सम्भव है और न ही समाधि की अवस्था का स्थायी बोध। इस प्रकार कुण्डलिनी, सुषुम्ना और नाद तीनों परस्पर पूरक तत्त्व हैं, जिनके समन्वय से हठयोग की आन्तरिक साधना पूर्णता प्राप्त करती है। नादानुसंधान की दृष्टि से यह भी महत्वपूर्ण है कि कुण्डलिनी-जागरण के उपरान्त साधक का ध्यान क्रमशः बाह्य इन्द्रियानुभवों से हटकर अन्तःचेतना की सूक्ष्म अनुभूतियों की ओर केन्द्रित होने लगता है। फलतः अनाहत नाद का अनुभव किसी कल्पना या मानसिक प्रक्षेपण का परिणाम न होकर चेतना की परिष्कृत अवस्था का द्योतक बन जाता है। यही कारण है कि हठयोग परम्परा में नादानुसंधान को केवल श्रवण की साधना न मानकर चेतना के क्रमिक उत्कर्ष का विश्वसनीय संकेत माना गया है।

नादानुसंधान की साधना एवं चार अवस्थाएँ

नादानुसंधान को एक क्रमिक साधना के रूप में निरूपित किया गया है, जिसका उद्देश्य साधक के चित्त को स्थूल अनुभवों से सूक्ष्म चेतना की ओर उन्मुख करना है। यह प्रक्रिया आकस्मिक नहीं होती, बल्कि दीर्घकालीन अभ्यास, प्राणसंयम, नाड़ीशुद्धि तथा अन्तर्मुखता के परिणामस्वरूप विकसित होती है। हठयोग प्रदीपिका इस क्रम को चार अवस्थाओं/कृआरम्भ, घट, परिचय तथा निष्पत्तिकृमें विभाजित करती है। ये चारों अवस्थाएँ साधक की आन्तरिक प्रगति का क्रमिक मानदण्ड हैं, जिनके माध्यम से नादश्रवण अंततः राजयोग एवं समाधि में परिणत होता है।

आरम्भावस्था

नादानुसंधान की प्रथम अवस्था को आरम्भावस्था कहा गया है। इस स्तर पर साधक के भीतर सूक्ष्म परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं। ब्रह्मग्रन्थ के भेदन के साथ अनाहत नाद का प्रथम अनुभव होने लगता है। यह नाद स्थूल श्रवण का विषय न होकर आन्तरिक चेतना में अनुभूत होने वाली सूक्ष्म ध्वनि है। इसी अवस्था में शरीर की शुद्धि, दिव्य कांति, सुगन्ध तथा स्वास्थ्य जैसे लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। इन लक्षणों का उद्देश्य चमत्कार का प्रदर्शन नहीं, बल्कि यह संकेत देना है कि साधना अब स्थूल स्तर से सूक्ष्म स्तर की ओर अग्रसर हो रही है। शिव संहिता यद्यपि आरम्भावस्था का इतना विस्तृत वर्णन नहीं करती, तथापि वह नाड़ीशुद्धि के पश्चात् उत्पन्न होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन को साधना की अनिवार्य उपलब्धि मानती है। ग्रंथ के अनुसार नाड़ियों की शुद्धि होने पर साधक के शरीर में सन्तुलन, सुगन्ध, कांति तथा मानसिक स्थिरता का विकास होता है, जो आगे की योगिक प्रगति के लिए आवश्यक आधार प्रदान करता है। इस प्रकार दोनों ग्रंथ इस बात पर सहमत हैं कि साधना का प्रथम चरण आन्तरिक शुद्धि और चेतना के परिष्कार से सम्बन्धित है।

घटावस्था

आरम्भावस्था के पश्चात् साधक घटावस्था में प्रवेश करता है। इस अवस्था का मूल आधार प्राण और चित्त का समन्वय है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार जब प्राण मध्य मार्ग में स्थिर हो जाता है, तब साधक का आसन दृढ़ हो जाता है तथा उसका ज्ञान अधिक परिपक्व रूप ग्रहण करता है। विष्णुग्रन्थि के भेदन के साथ परमानन्द का अनुभव प्रारम्भ होता है और नाद का स्वर भी अधिक स्पष्ट एवं गंभीर हो जाता है। यहाँ साधना केवल शारीरिक अनुशासन नहीं रहती, बल्कि वह चौतन्त्र्य की एक नवीन अवस्था में प्रवेश करती है। शिव संहिता में भी घटावस्था का संकेत प्राण, अपान, जीवात्मा तथा परमात्मा के समन्वय के रूप में मिलता है। ग्रंथ स्पष्ट करता है कि इन तत्त्वों का समन्वय ही श्घटश् कहलाता है। इस प्रकार घटावस्था का वास्तविक आशय शरीर और चेतना के समन्वित आध्यात्मिक रूपान्तरण से है, न कि केवल किसी साधनात्मक उपलब्धि से।

परिचयावस्था

नादानुसंधान की तृतीय अवस्था को परिचयावस्था कहा गया है। श्परिचयश् का तात्पर्य यहाँ केवल ज्ञान-प्राप्ति से नहीं, बल्कि उस आध्यात्मिक स्थिति से है जिसमें साधक का चित्त सूक्ष्म नाद के साथ स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस अवस्था में नाद बाह्य अनुभव का विषय न रहकर साधक की अन्तःचेतना का स्वाभाविक आधार बन जाता है। फलस्वरूप चित्त का विक्षेप क्षीण होने लगता है और उसकी प्रवृत्ति स्वतः अन्तर्मुखी होकर लय की ओर अग्रसर होती है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार परिचयावस्था में साधक की चेतना महाशून्य में प्रवेश करती है। इस समय नाद की सूक्ष्मता और गहनता में वृद्धि होती है तथा साधक का अनुभव सामान्य मानसिक अवस्थाओं से भिन्न हो जाता है। ग्रंथकार इस अवस्था को सहजानन्द की पूर्वपीठिका मानते हैं, जहाँ चित्त विषयानुभवों से निवृत्त होकर आत्मानुभूति की ओर उन्मुख होता है। परिणामस्वरूप साधक क्रमशः दुःख, जरा, व्याधि, क्षुधा तथा निद्रा जैसे शारीरिक एवं मानसिक बन्धनों से ऊपर उठने लगता है। यहाँ इन कथनों का अभिप्राय शरीर के प्राकृतिक नियमों का निषेध नहीं, बल्कि साधना की उस अवस्था का संकेत है जिसमें इनका प्रभाव साधक की चेतना पर न्यूनतम रह जाता है। शिव संहिता भी इस स्तर को प्राण के सुषुम्ना में स्थिर प्रवाह से सम्बद्ध करती है। ग्रंथ के अनुसार जब साधक का अभ्यास परिपक्व हो जाता है, तब प्राण चन्द्र एवं सूर्य नाड़ियों का अतिक्रमण कर सुषुम्ना में स्थिर होता है तथा चक्रों का क्रमिक भेदन करता है। यह प्रक्रिया चित्त को बाह्य विषयों से मुक्त कर आत्मबोध की दिशा में अग्रसर करती है। इस प्रकार शिव संहिता परिचयावस्था को केवल नाद के अनुभव तक सीमित न रखकर सम्पूर्ण योगिक चेतना के रूपान्तरण की अवस्था के रूप में स्वीकार करती है।

निष्पत्ति अवस्था

नादानुसंधान की अंतिम एवं सर्वोच्च अवस्था निष्पत्त्यवस्था है। श्निष्पत्तिश् का अर्थ यहाँ साधना की पूर्णता अथवा उसके चरम फल से है। यह वह अवस्था है जहाँ चित्त का लय पूर्ण होकर साधक राजयोग अथवा समाधि का अनुभव करता है। इस अवस्था में साधना का उद्देश्य, साधक तथा साधनकृद् इन तीनों के मध्य विद्यमान भेद क्रमशः लुप्त होने लगता है और चेतना अखण्ड आत्मानुभूति में प्रतिष्ठित हो जाती है। जब रुद्रग्रन्थि का भेदन होता है, तब साधक वैणव नाद का अनुभव करता है। इसी अवस्था में चित्त पूर्णतः एकाग्र होकर राजयोग की स्थिति प्राप्त करता है। ग्रंथकार के अनुसार यह अवस्था केवल मानसिक शान्ति नहीं, बल्कि चेतना के उस रूपान्तरण का प्रतीक है जहाँ योगी सृष्टि और संहार के रहस्य का साक्षात्कार करने योग्य बन जाता है। यद्यपि ग्रंथ में सिद्धियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है, तथापि उनका उद्देश्य साधक को आकर्षित करना नहीं, बल्कि साधना की प्रगति का सांकेतिक निरूपण करना है। वास्तविक उपलब्धि चित्त का अखण्ड लय और परम आनन्द की अनुभूति है। शिव संहिता के अनुसार जब कुण्डलिनी ब्रह्ममार्ग में प्रवेश कर परम तत्त्व में लीन होती है, तब सम्पूर्ण सृष्टि का अनुभव साधक की चेतना में परमात्मा में विलीन हो जाता है। इस अवस्था में मन निरालम्ब हो जाता है और समस्त संकल्प-विकल्प समाप्त हो जाते हैं। परिणामतः साधक द्वैतबोध से मुक्त होकर कैवल्य का अनुभव करता है। यहाँ समाधि किसी विशेष मानसिक स्थिति का नाम नहीं, बल्कि आत्मा की स्वाभाविक एवं अखण्ड स्थिति का बोध है।

हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में नादानुसंधान, साधना एवं समाधि का तुलनात्मक विश्लेषण

हठयोग प्रदीपिका तथा शिव संहिता हठयोग के दो प्रमुख एवं प्रामाणिक ग्रंथ हैं। दोनों का उद्देश्य योगसाधना के माध्यम से साधक को आत्मबोध एवं समाधि की अवस्था तक पहुँचाना है, तथापि उनकी प्रस्तुति, साधना-पद्धति तथा दार्शनिक अभिव्यक्ति में कुछ विशिष्ट भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। नादानुसंधान, साधना एवं समाधि के संदर्भ में इन दोनों ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यद्यपि इनके प्रतिपादन की शैली भिन्न

है, तथापि दोनों का अन्तिम लक्ष्य चित्तलय और परमात्मानुभूति ही है। नादानुसंधान के विषय में हठयोग प्रदीपिका अधिक स्पष्ट एवं क्रमबद्ध प्रतिपादन प्रस्तुत करती है। ग्रंथकार ने नादानुसंधान को समस्त लय-साधनों में श्रेष्ठ स्वीकार करते हुए उसे राजयोग की प्राप्ति का सर्वाधिक प्रभावी उपाय माना है। इसके साथ ही नादश्रवण की विधि, साधना की अवस्थाएँ तथा चित्तलय की क्रमिक प्रक्रिया का व्यवस्थित निरूपण किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हठयोग प्रदीपिका का दृष्टिकोण मुख्यतः साधनात्मक है, जहाँ साधक को क्रमशः अभ्यास के माध्यम से समाधि की ओर अग्रसर किया जाता है। इसके विपरीत शिव संहिता नादानुसंधान का विवेचन प्राण, मन, सुषुम्ना तथा कुण्डलिनी के व्यापक योगिक सन्दर्भ में करती है। यहाँ नाद स्वयं में साध्य नहीं है, बल्कि वह उस अवस्था का द्योतक है जिसमें प्राण सुषुम्ना में प्रतिष्ठित होकर मन को विषयासक्ति से मुक्त कर देता है। ग्रंथ का विशेष बल इस तथ्य पर है कि मन और प्राण का लय ही वास्तविक योग है तथा इसी के परिणामस्वरूप समाधि का अनुभव सम्भव होता है। इस प्रकार शिव संहिता का प्रतिपादन अपेक्षाकृत अधिक दार्शनिक एवं तात्त्विक है। साधना-पद्धति की दृष्टि से दोनों ग्रंथ गुरु की अनिवार्यता, अभ्यास की निरन्तरता तथा प्राणसंयम के महत्त्व पर समान रूप से बल देते हैं। दोनों के अनुसार बिना गुरु के निर्देशन के योग की सूक्ष्म अवस्थाओं का अनुभव कठिन है। इसी प्रकार नाडीशुद्धि, प्राणायाम, सुषुम्ना-जागरण तथा अन्तर्मुखता को नादानुसंधान की आवश्यक पूर्वभूमि माना गया है। यह साम्य इस तथ्य का प्रमाण है कि हठयोग परम्परा में साधना का आधार केवल शारीरिक अनुशासन नहीं, बल्कि गुरु-परम्परा, संयम और दीर्घकालीन अभ्यास है। समाधि की अवधारणा के सम्बन्ध में भी दोनों ग्रंथों का अन्तिम निष्कर्ष समान है, यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति में अन्तर है। हठयोग प्रदीपिका समाधि को राजयोग, उन्मनी तथा चित्तैकता के रूप में प्रस्तुत करती है, जहाँ नाद के माध्यम से मन का पूर्ण लय सम्पन्न होता है। दूसरी ओर शिव संहिता समाधि को कैवल्य, निरालम्ब चित्त तथा परमात्मा में पूर्ण अभेद की अनुभूति के रूप में निरूपित करती है। इस प्रकार एक ग्रंथ साधना की प्रक्रिया पर अधिक केन्द्रित है, जबकि दूसरा उसके दार्शनिक परिणाम को अधिक विस्तार से स्पष्ट करता है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हठयोग प्रदीपिका और शिव संहिता परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे की पूरक ग्रंथ-परम्पराएँ हैं। जहाँ हठयोग प्रदीपिका साधक को नादानुसंधान की क्रमिक साधना का व्यावहारिक मार्ग प्रदान करती है, वहीं शिव संहिता उसी साधना के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आशय को उद्घाटित करती है। अतः दोनों का समन्वित अध्ययन न केवल हठयोग की साधना-पद्धति को अधिक स्पष्ट करता है, बल्कि समाधि की अवधारणा को भी व्यापक एवं समग्र रूप में समझने में सहायक सिद्ध होता है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हठयोग परम्परा में नादानुसंधान केवल एक ध्यान-विधि नहीं, बल्कि सम्पूर्ण योगसाधना का परिपक्व एवं उच्चतम चरण है। हठयोग प्रदीपिका और शिव संहिता दोनों ही ग्रंथ इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि समाधि की प्राप्ति आकस्मिक नहीं होती, बल्कि गुरु-उपदेश, नाडीशुद्धि, प्राणसंयम, कुण्डलिनी-जागरण, सुषुम्ना-प्रवेश तथा मनोलय की क्रमिक साधना का स्वाभाविक परिणाम है। हठयोग प्रदीपिका नादानुसंधान को लययोग का सर्वोच्च साधन मानते हुए उसके माध्यम से राजयोग की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। ग्रंथ में आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति की अवस्थाओं के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि साधक का चित्त किस प्रकार स्थूल अनुभवों से सूक्ष्म चेतना की ओर अग्रसर होकर अन्ततः समाधि में प्रतिष्ठित होता है। दूसरी ओर शिव संहिता इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्राण, मन, सुषुम्ना और कुण्डलिनी के पारस्परिक सम्बन्ध के माध्यम से व्याख्यायित करती है तथा समाधि को आत्मा और परमात्मा की अभिन्न अनुभूति के रूप में स्थापित करती है। दोनों ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि नादानुसंधान हठयोग की साधना में केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि चेतना के रूपान्तरण की क्रमिक प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य

बाह्य ध्वनि का श्रवण नहीं, बल्कि चित्त को अन्तर्मुख कर उस अवस्था तक पहुँचाना है जहाँ मन, प्राण और आत्मचेतना में पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो जाता है। यही सामंजस्य समाधि का वास्तविक स्वरूप है। अतः यह कहा जा सकता है कि हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में प्रतिपादित नादानुसंधान, साधना और समाधि की अवधारणाएँ भारतीय योग-दर्शन की समृद्ध परम्परा का प्रतिनिधित्व करती हैं। वर्तमान समय में भी इन ग्रंथों का अध्ययन केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं चेतना-अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त प्रासंगिक है। प्रस्तुत अध्ययन इस तथ्य को स्थापित करता है कि नादानुसंधान हठयोग की साधना में समाधि की प्राप्ति का एक सुव्यवस्थित, क्रमिक एवं अनुभवप्रधान मार्ग है।

संदर्भ—

1. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं०3/32।
2. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 5/44।
3. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/66।
4. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/20।
5. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं०5/44।
6. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/68।
7. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/66।
8. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 4/29।
9. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं०3/29।
10. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 3/11, 19।
11. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं०3/28।
12. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/20; परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं०2/27।
13. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/15।
14. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/21।
15. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/24।
16. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 3/71, 72।
17. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/10।
18. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/22।
19. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 5/165।
20. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/69।
21. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/70।
22. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 3/30।
23. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/72।
24. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 3/66।
25. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/74।
26. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/75।
27. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 3/71।
28. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/76।
29. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/77।
30. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 5/200, 212।
31. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/66।
32. स्वामी दिगम्बर, डॉ. पीताम्बर झा, हठयोग प्रदीपिका, कैवल्यधाम पुणे, 2017, ह०प० 4/29।
33. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 3/11।

34. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, शिव संहिता, चोखंभा ओरियंटल दिल्ली, 2000, शि०सं० 5/212।

Cite this Article

'मनीष कुमार', "हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में नादानुसंधान, साधना एवं समाधि का विवेचन", Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal, ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:3, Issue:8, August 2026.

“Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author.”

